

आधुनिक बनाम पाश्चात्य

वह आधुनिक ही है जो हमेशा पुराना हो जाता है।

-ऑस्कर वाइल्ड

'आधुनिक' और 'पाश्चात्य' के बीच भेद जानने की असमर्थता ही हमारे दुख का कारण है। सभी बुद्धिजीवी तथा सभ्य मनुष्यों की आलोचनात्मक सोच केवल पश्चिम की पूंजी नहीं है बल्कि सर्वव्यापक है तब हमें उस पर इतना दुखी नहीं होना पड़ेगा। हमें अपनी शक्ति को अच्छे कामों के लिए बचाकर रखना चाहिए न कि उसे स्वदेशी, हिंदुत्व, भारतीय भाषा पर विवाद, अमेरिका पर टिप्पणी, विदेशी पूंजी निवेशकों पर कटाक्ष आदि बेकार के मुद्दों पर बरबाद करना चाहिए। उन्नीसवीं शताब्दी में राजा राममोहन राय द्वारा शुरू आधुनिकीकरण तथा पश्चिमी सभ्यता के बीच विवाद आज भारतीय जनता पार्टी के उत्थान से और प्रचंड हो गया है। भावों की उलझनें हमें विदेशी व्यापार तथा पूंजी निवेश के बीच परस्पर विरोधी धारणाओं में बांध देती हैं। ये हमें वैश्वीकृत दुनिया में सुरक्षा की गुहार करने के लिए प्रेरित करती हैं। इससे हमारी आर्थिक सुधारों के प्रति अनुक्रिया धीमी पड़ जाती है तथा एक प्रतिस्पर्धात्मक अर्थव्यवस्था बनाने की सक्षमता कम हो जाती है। इस मुद्दे के मूल में भारतीय परंपरा, संस्कृति तथा रहन-सहन के खो जाने का एक डर-सा है। मगर यह हर अक्सर पश्चिम के समक्ष हीनता का लक्षण है, खासतौर से पुरानी पीढ़ी के साथ शासन कर रही है।

आश्चर्यजनक रूप से उन्नीसवीं शताब्दी के हमारे कई बुद्धिजीवियों ने इस भेद को अच्छी तरह समझा और हमारी परंपराओं का आलोचनात्मक अध्ययन कर, इसे इस्तेमाल कर, उन सभी संगठनों तथा रीतियों को खत्म कर दिया जिन्होंने इतनी शताब्दियों से

अस्थिरता और अंधविश्वास के सहारे इसकी आत्मा को विकृत कर दिया था। इसी प्रकार की आज की नई पीढ़ी आत्मविश्वासी व व्यावहारिक होती नजर आ रही है जो उपनिवेशवाद से प्रभावित भी नहीं है। उदाहरण के तौर पर मेरे पड़ोसी की बेटी निर्यातक है जो वैश्विक अर्थव्यवस्था में रोजाना भाग लेती है। जब वह अपने विंडोज सॉफ्टवेयर पर काम करती है तो अपने ग्राहकों की नागरिकता या वह कहां रहते हैं, जाने बिना उनके अंग्रेजी में पूछे गए सवालों का जवाब देती है तथा अपने मूल्यों का उल्लेख डॉलरों में करती है। वह अपने-आप को छोटा महसूस नहीं करती क्योंकि अंग्रेजी इंग्लैंड की भी राष्ट्रीय भाषा है, डॉलर अमेरिका की राष्ट्रीय मुद्रा है और विंडोज की उत्पत्ति सिएटल में हुई। उसकी कामकाजी दुनिया में, अंग्रेजी व्यापार की एक विश्व व्यापक भाषा, डॉलर विश्व व्यापार की मुद्रा तथा विंडोज संचार का माध्यम है।

जब मैं बारह वर्ष का था तब मेरी मध्यवर्गीय बुआएं दिल्ली में हमारी आकर्षक पड़ोसन के बारे में लगातार बातें करती थीं। "तुम यह कहना चाहती हो कि तुम उसे नहीं जानती? वह एक आधुनिक महिला है। वह सिगरेट पीती है, वह शराब पीती है और यहां तक कि पुरुषों के साथ नाचती भी है।" एक साल बाद हम वहां से आगे गए और उनकी पड़ोसन को पीछे छोड़ आए। मगर मैं 'आधुनिक' शब्द के गलत अर्थ के साथ बड़ा हुआ। मेरी बुआओं के लिए 'आधुनिक' शब्द का अर्थ है, किसी के द्वारा पश्चिमी सभ्यता को उसके गलत और बनावटी उसूलों को यानी हमारे भगवान से डरने वाली परंपराओं के विपरीत अपनाना, मगर मेरी बुआओं की यह सोच असामान्य नहीं थी। मैंने 1965 में न्यूयॉर्क रिव्यू ऑफ बुक्स में एक विज्ञापन में एक उत्तेजक उपन्यास के बारे में पढ़ा जो केवल डाक द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता था, इस विज्ञापन में किताब की व्याख्या 'आधुनिक अमेरिकी विवाह की कहानी' के रूप में की हुई थी। इस विज्ञापन में जो

'आधुनिक' का मतलब दिया था वह सही नहीं था जैसे कि नारी की महत्वाकांक्षाएं उसका आक्रामक रूप तथा उसके अविश्वास।

कॉलेज में मैंने पाया कि जरूरी नहीं है कि 'आधुनिक' का मतलब नकारात्मक या पाश्चात्य है। जिस शब्द का हम आज इस्तेमाल करते हैं, वह उन्नीसवीं शताब्दी में यूरोप में उस वक्त उत्पन्न हुआ जब पश्चिमी समाज में चकित कर देने वाले परिवर्तन हो रहे थे। अर्थव्यवस्थाओं का औद्योगीकरण हुआ, स्वतंत्र राज्यों का गठन हुआ, सामाजिक प्रजातंत्र उभरा, राष्ट्रीय दफ्तरशाही उत्पन्न हुई और इस प्रकार विश्व ने विशाल समाज के उत्पन्न होने की शुरुआत देखी। इन सभी तेज रफ्तार से होते हुए बदलावों को एक अर्थ देते हुए इतिहासकारों ने निष्कर्ष निकाला कि वे सब एक-दूसरे से संबंधित थे। सही शब्द न मिलने के कारण उन्होंने उसे आधुनिकता का नाम दे दिया। इसके अलावा उन्होंने इन बदलावों को गुणों और संस्थाओं के एक समूह के रूप में उदार स्वीकृति से जोड़ दिया जिसका नाम उन्होंने 'आधुनिक' रखा। अठारहवीं शताब्दी में नैतिकता के फूल खिले और फ्रांसीसियों ने समता, स्वाधीनता और बंधुता की क्रांति छेड़ी। नैतिक गुणों में व्यक्तिवाद, तर्क-शक्ति, धर्मनिरपेक्ष प्रवृत्ति (धर्म से परे), कानूनी नियम (अलग-अलग राजाओं के प्रति वफादारी के बजाए), प्रतिनिधित्व सरकार और बाजारू अर्थव्यवस्था में विश्वास था। इस विश्वास के पीछे मनुष्य के हालात सुधरने की एक आशावादी भावना थी।

जब हमारा देश आजाद हुआ, तब गांधीजी की इच्छा के विपरीत शिक्षित भारतीयों के बीच यह मत था कि अगर हमें सफल होना है तो हमें आधुनिक समाज का गठन करना पड़ेगा। हमें एक मजबूत स्वतंत्र राज्य तथा उसके प्रशासन के लिए एक प्रभावशाली नौकरशाही बनानी है तथा हमें सांप्रदायिक शांति बहाल करने के लिए धर्मनिरपेक्ष होना पड़ेगा, हमें सामाजिक प्रजातंत्र को बढ़ाने के लिए निचली जाति के लोगों को ऊपर उठाना

होगा, हमें समता लाने के लिए प्रजातंत्र में व्यापक मताधिकार का प्रयोग करना होगा। इन सभी को साकार करने के लिए आधुनिकता के गुणों को 1950 में भारत के संविधान में संचित किया गया।

1950 के साल हमारे इतिहास में बहुत महत्व रखते हैं क्योंकि शिक्षित मध्यवर्गीय लोग इन आधुनिक गुणों को बहुत मानते थे। मुझे यह जानकर हैरानी हुई कि मध्यवर्ग के लोगों में बहुत से लोग यह सोचते थे कि हम एक बेहतर समाज की रचना कर सकते हैं इसलिए वर्ष 1950 में वस्तुतः हमारे हजार साल पुराने समाज, जबकि पढ़े-लिखे पहुंच वाले सिर्फ अपने निर्वाण और उत्थान के बारे में ही सोचते थे, के बीच एक विभाजन रेखा खिंच गई। उन्नीसवीं शताब्दी की शुरुआत में राजा राममोहन राय से शुरू करते हुए महात्मा गांधी की राष्ट्रीय लड़ाई तथा आजादी को मिलाते हुए हमें यह अहसास हुआ कि आधुनिक होने के लिए समाज में सुधार होना बहुत जरूरी था। आजादी के बाद हमारे शासकों ने कम-से-कम कुछ पहल के लिए इन सिद्धांतों पर ईमानदारी से अमल किया।

मेरे चाचाजी दिल्ली में मेरी चाचीजी से अलग रहते थे। मेरी मां के देवर अक्सर मेरे माता-पिता को टोकते रहते थे कि हम कुछ ज्यादा ही पाश्चात्य होते जा रहे हैं। उन्होंने कहा कि यह परेशानी हमारी स्कूली पढ़ाई में थी। हम अपनी संस्कृति से विमुख होते जा रहे थे। मेरे माता-पिता को तो तब तक कुछ पता नहीं था, इस बारे में क्या करना चाहिए जब तक कि हमारे पड़ोसी, मेरे पिताजी के बॉस ने मुझे संस्कृत पढ़ाने की सलाह नहीं दी। मेरी मां इस विचार से काफी खुश हुईं। बस हर रविवार सुबह को हांडा साहब के घर मेरी पढ़ाई शुरू हो गई। पहले आधे घंटे में मैं भगवद्गीता से लिया गया श्लोक याद करता, दूसरे आधे घंटे में वह मुझे उस श्लोक का अर्थ समझाते थे। मुझे श्लोक याद

करना बिल्कुल अच्छा नहीं लगता था, परंतु मुझे उनके द्वारा सुनाई गई कहानियां, खास तौर से महाभारत की लड़ाई के बारे में, सुनने में बहुत मजा आता था।

हांडा साहब मुझे बताया करते थे कि पश्चिमी आदमी की सफलता, उसकी मानवीय तर्कशक्ति के प्रति निष्ठा के कारण हुई। विज्ञान और इंजीनियरिंग, मेरे पिताजी की तरह वह भी एक इंजीनियर थे, भौतिकशास्त्र संबंधी समस्याओं को तर्क के आधार पर जांच करने का परिणाम है। परिणामस्वरूप पश्चिम ने काफी तरक्की की तथा आर्थिक लाभ हासिल किया। हालांकि उन्होंने कहा कि आर्थिक लाभ ही सब कुछ नहीं होता। तर्क के प्रति अत्यधिक निष्ठा ने पश्चिमी मनुष्य को प्रभु के होने के प्रति अविश्वास तथा अपनी आत्मा से दूर कर दिया। दूसरी तरफ पूर्वी इंसान ने अपनी रोजमर्रा की जिंदगी में आध्यात्मिकता को कायम रखा। यहां तक कि पाश्चात्य रोजगार में शामिल पढ़े-लिखे और कामयाब भारतीय भी लगातार आध्यात्मिक जिंदगी से जुड़े हुए हैं। उन्होंने इसका उल्लेख करते हुए मेरे पिताजी तथा हमारे बहुत से पड़ोसी तथा मित्रों का उदाहरण दिया। मनुष्य जीवन तब तक अधूरा है जब तक वह तर्क को आध्यात्मिकता से नहीं जोड़ता। उन्होंने बताया कि गीता में एक आदर्श पूर्ण जिंदगी जीने के लिए उचित सम्मिश्रण प्रस्तुत किया गया है।

हांडा साहब तीन प्रकार के ज्ञान के बारे में बताते थे, विश्व ज्ञान, आत्म ज्ञान तथा ईश्वर ज्ञान। विश्व ज्ञान तर्कशक्ति और भौतिकशास्त्र से आया। आत्मज्ञान का कुछ हिस्सा मनोविज्ञान तथा सामाजिक विज्ञान से तथा इसके बारे में पश्चिम से भी हमें कुछ शिक्षा प्राप्त हुई, परंतु ईश्वर-ज्ञान के लिए गीता का ज्ञान होना जरूरी है। गीता के अनुसार किताबी ज्ञान काफी नहीं है। इसे कर्म से जोड़ना तथा इसे अनुभव करना जरूरी है। सही कर्म वही है जो इच्छा रहित और स्वार्थ रहित हो, यानी कि वह कर्म जो बिना किसी

लगाव, फल या लाभ की इच्छा से किया गया हो। वही कार्य उचित है जो धर्म समझ के किया जाए, न कि इसलिए क्योंकि वह कर्म करने वाले के अनुकूल है। ईश्वर-ज्ञान ध्यान करने से भी प्राप्त होता है। उन्होंने कहा कि एक आधुनिक भारतीय के लिए आदर्श जिंदगी वही है जिसमें पूर्व की आध्यात्मिकता और ज्ञान तथा पश्चिम की तर्कशक्ति और तकनीकी ज्ञान मिले हों। हांडा साहब ने कहा कि अब भारत में हमें जो चाहिए वह है पश्चिम के विज्ञान के सहारे बने उद्योग जिसमें हमारी आध्यात्मिक परंपरा विद्यमान होगी। यह हमारी राष्ट्रीय योजना थी। चलो, तुम दोबारा श्लोक याद करने लग जाओ।

कई साल बाद हांडा साहब द्वारा सिखाए गए सबकों के बारे में सोचा। यह ख्याल कि मेरे पिताजी के बॉस अपने रविवार की सुबह मुझे देंगे, काफी माने रखता था। मेरे पिताजी और हांडा साहब उस जमाने के ठेठ शिक्षित भारतीयों में से थे, उनका रास्ता आध्यात्मिक था। मैंने यह महसूस किया कि जो लोग भगवान के अस्तित्व पर शक करते थे, जिन्होंने भारत के अंधविश्वासों का अनादर किया वे भी धार्मिक और दर्शनशास्त्रीय तथ्यों से आकर्षित हो गए। इसलिए भारतीय अध्यात्म का विचार कोई कथा नहीं है। जब मैं अपने बारे में सोचता हूँ तो पाता हूँ कि शुरु में मैं कॉलेज में इंजीनियरिंग पढ़ने गया। फिर मैंने अर्थशास्त्र लिया और आखिर में दर्शनशास्त्र में डिग्री प्राप्त की क्योंकि वही एक विषय था जिसमें मैं अपने बड़े-से-बड़े सवाल का उत्तर पा सकता था।

नेहरू ने हमारे देश में आधुनिकता लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उनकी सुरुचिपूर्ण आत्मकथा तथा भारत के बीते दिनों की अनोखी व्याख्या उनके विश्वास की साक्षी है। स्वतंत्र भारत के पहले सत्रह सालों में उनको जिंदगी का सबसे बड़ा मौका मिला, इन विचारों को लागू करने और भारत को बदलने का। उन्होंने अपने इस प्रस्ताव को तीसरे मार्ग का नाम दिया जो वर्तमान तंत्रों जैसे रूस, अमेरिका आदि में से अच्छाइयां लेकर

कुछ इस तरह बनाए गए जो हमारे इतिहास और दर्शन के लिए उचित हो। तीसरे मार्ग ने पूंजीवाद के विकास तथा समाजवाद के न्याय को साम्यवादी हिंसा के बिना जोड़ने की कोशिश की। आखिर में यह तीसरा मार्ग असफल हो गया। 1964 में नेहरू के निधन से पहले ही इसने हमें निराश कर दिया था। हमें न तो पूंजीवाद की तीव्र वृद्धि मिल सकी और न ही समाजवाद का न्याय। हम देश की विशाल गरीबी पर कोई महत्वपूर्ण प्रभाव नहीं डाल पा रहे थे। हम यह सोचने लगे कि भारत कम्युनिस्ट हिंसक क्रांति के बगैर आधुनिक हो पाएगा या नहीं? आय में औसतन वृद्धि के निष्क्रिय होने का कारण बढ़ती विस्फोटक आबादी थी जो शताब्दी के आधे भाग में एक प्रतिशत से ढाई प्रतिशत बढ़ गई। भ्रष्टाचार बढ़ गया और सर्वव्याप्त होने लगा और लोगों में अनुशासन कम होने लगा। असलियत सामने लगी और तथ्य आधुनिक आदर्शों से अलग होने लगे।

नेहरू भले ही एक महान आधुनिक निर्माता रहे हों, परंतु वह एक अच्छे व्यवस्थापक नहीं थे। उनमें व्यवस्था, उसको कार्यान्वित करने तथा उसका विस्तार करने के प्रति धैर्य नहीं था। उनकी नीतियों से ज्यादा उनका प्रशासन था जिसने हमें नाकामयाब किया। फ्रांसीसी क्रांति के विचारों का प्रचार करने तक तो ठीक था परंतु सबको यह दिख रहा था कि स्वाधीनता अनुशासनहीनता की ओर बढ़ती जा रही है। शक्तिशाली शासक राजनीतिक दल गरीबों को समता दिलाने के नाम पर ऊंचे उठ रहे थे और बंधुता केवल रिश्वत देने और लेने वालों के बीच ही रह गई। संघ खासतौर से सरकारी क्षेत्र में बहुत शक्तिशाली होते जा रहे थे और देश को शासित करना उतना ही मुश्किल होता जा रहा था। इस गिरावट की प्रतीक थी कांग्रेस पार्टी। एक शक्तिशाली प्रबंधक (शायद सरदार पटेल) ने यह सब नहीं होने दिया होता। समाजवादी सिद्धांत लाइसेंस राज में न बदले होते। अगर कार्यों पर नजर रखी गई होती, नीतियों के असर को समयानुकूल परखा गया होता, प्रभावकारी

कार्यों के बीच आई बाधाओं को रोका गया होता यानी वे सभी कार्य जो एक अच्छा व्यवस्थापक अपने कार्यकाल में करता है, तब बात ही कुछ और होती। नीतियां पहले ही ठीक हो सकती थीं। बदकिस्मती से इंदिरा गांधी ने परेशानी को और उलझा दिया।

नेहरू ने इंडियन सिविल सर्विसेज के स्टील फ्रेम पर कुशल कार्यान्वय का ठप्पा लगाया। इसने उन्हें बुरी तरह नीचा दिखाया। यह ब्रिटिश साम्राज्य द्वारा नियम, कानून और जमीन पर कर जमा करने के लिए बनाई गई थी। मगर यह विकास, लाभ और पिछड़े समाज को आधुनिक बनाने के लिए नहीं था। यह नियंत्रण पर नियंत्रण बढ़ाती गई और इसने एक आर्थिक बोझ के रूप में दैत्य को जन्म दे दिया। अंत में यह कहना मुश्किल हो गया कि क्या उन नीतियों या उनको कार्यान्वित करने के ढंग में खोट है। यही हमारी असफलता का कारण था। मेरे खयाल से दूसरे कारण का द्योतक ज्यादा था। नेहरू का मुख्य पूर्वाधिकार था विदेशी मामलों और उनकी विश्व साहित्य में जगह। इसमें विकास शामिल नहीं हुआ। उन्होंने अपने विदेश मंत्री बनने पर जोर दिया जिससे वह अनावश्यक विदेश मंत्रालय चलाने के फंदे में फंस गए। मिशेल ब्रीयर जिसने उन्हें कई साल तक करीब से देखा, लिखते हैं, "उनका तुच्छ पर ध्यान, इंसान को उसकी पहचान पर चौंकाने वाला है। अगर नेहरू की प्राथमिकता सही ढंग से कार्यान्वित हुई होती तो उन्हें विकास की भूख होती और एक काबिल व्यवस्थापक होते तो वह हमारे आचार और संस्थाएं सही मायने में आधुनिक बनाने में सफल होते।"

उस वक्त मैं हार्वर्ड में था जब पहली बार मेरा संपर्क आधुनिक सिद्धांत से पड़ा। हालांकि, मैं समाजवाद का विद्यार्थी नहीं था, समाजवाद विभाग के प्रोफेसर टालकाट पारसंस व्यापक बुद्धिमत्ता की मिसाल थे और उनके विचारों से कोई नहीं बच सकता था। पारसंस और आधुनिकीकरण गिरोह ने मुझे विकास में पूर्ण विश्वास रखने वाले ज्ञानवर्धन

अभियान के बच्चों की तरह छू लिया। एक प्रतीकात्मक अमेरिकी की तरह वह इस सरल विश्वास से भरे हुए थे कि एक आधुनिक समाज ही अच्छा समाज हो सकता है। उन्होंने सोचा कि जैसे ही समाज आधुनिक बना दिनोंदिन के निर्णय बनाने में तर्कशक्ति का इस्तेमाल होने लगा और धीरे-धीरे सामंतवादी गतिविधियों को खत्म कर प्रत्येक व्यक्ति को उसकी प्रतिष्ठा वापस मिल जाएगी। जैसे ही इसका औद्योगीकरण हुआ, यह और भी ज्यादा समृद्ध और संतुलित हो जाएगी और आखिरकार यह प्रजातंत्र और सामान्य कानून और नियम के साथ आजाद हो जाएगी। विकासशील अर्थशास्त्रियों की तरह समाज का भी 1950-60 के शुरू में समूह था। वह गरीबों के उत्थान, पारंपरिक समाजों को आधुनिक बनते देख काफी उत्सुक थे। आज स्कॉलर पूरी तरह से स्पष्ट नहीं हैं कि आधुनिकता किस प्रकार पारंपरिक समाजों पर असर डालती है या उसके प्रभाव हमेशा ही उदार होंगे। वे यह बात कहने से हिचकिचाते हैं कि अमेरिका, जो कि पहला 'आधुनिक समाज' है, उस दिशा का नेतृत्व करता है जिसमें बाकी समाजों को भी चलना चाहिए।

हालांकि महात्मा गांधी ने आधुनिकता को लोगों तक पहुंचाया पर वह बहुत गहराई से इस दुविधा से पीड़ित थे जो बहुत से विद्वान भारतीयों को दुखी कर रही थी। उन्होंने रेल तथा तार सेवाओं का खूब प्रयोग किया परंतु वे उनसे नफरत करते थे। वे पश्चिम तकनीक को उपनिवेशवाद से जोड़ते थे और उसे दासता का साधन बताते थे। वे अपने आपको इस बात से सहमत नहीं कर पाए कि पश्चिमी तकनीक विश्व-संबंधी समस्याओं को सुलझाने का एक तर्कपूर्ण मार्ग है और एक बार बनने के बाद उसके उत्पाद सभी मनुष्यों की व्यापक पूंजी। उन्होंने सोचा कि एक आधुनिक शहरी आदमी मनुष्यत्व से वंचित होकर मशीनों का शिकार हो गया है और उन्होंने उसके विकल्प में एक दूसरा नमूना प्रस्तुत किया जो आत्मनिर्भर गांवों के जनसमुदाय पर निर्भर था। नेहरू ने अपनी

योजना को निराशापूर्वक काल्पनिक बताया। अक्टूबर 1945 में जैसे-जैसे स्वाधीनता और स्वशासन पास आ रहे थे, गांधी ने नेहरू को लिखा, "सबसे पहले मैं जिस बारे में लिखना चाहता हूं, वह है, हमारे नजरिये की भिन्नता...में इस बात से सहमत हूं कि पहले या बाद में इस तथ्य को स्वीकारना पड़ेगा कि लोग गांवों में रहेंगे न कि शहरों में, झोपड़ियों में रहेंगे न कि महलों में। करोड़ों लोग शहरों और महलों में कभी भी एक साथ शांति से नहीं रह पाएंगे।"

हालांकि मैं आधुनिक विज्ञान की सराहना करता हूं, पर इसे सही आकार-प्रकार में प्रस्तुत करने की जरूरत है। नेहरू ने अपनी तरफ से यह तय किया कि यह समय ईमानदार होने का है, न कि बेकार के मुद्दों में पड़ने का, जो उन्होंने सारी जिंदगी किया। उन्होंने आनंद भवन से जवाब दिया, "मेरी समझ में यह नहीं आता कि यह जरूरी क्यों है कि गांव में सत्य और अहिंसा का ही वास रहे। आम तौर पर एक गांव की संस्कृति पिछड़ी होती है और पिछड़े माहौल में कोई विकास नहीं हो सकता। दकियानूसी खयालात के लोग ज्यादातर झूठे और हिंसक होते हैं।"

गांवों में 'उचित तकनीक' को लागू कर भारत को अपने ख्यालों के अनुसार दोबारा बनाने की आखिरी कोशिश के बाद गांधी ने इस मुद्दे को दोबारा नहीं उठाया। नेहरू अब आधुनिक भारत बनाने की अपनी योजनाओं को लागू करने के लिए आजाद थे, जो समाजवादी योजनाओं, पश्चिमी विज्ञान तथा तकनीकी के आधार पर आधारित थीं। मैं यह समझता हूं कि गांधी-आधुनिक सभ्यता को अस्वीकार करने में गलत थे क्योंकि यह रक्षा के औजारों को अस्वीकार करना था। गांधी की धरोहर और आधुनिकता के प्रति हमारी परस्पर विरोधी भावनाएं समाज के महत्वपूर्ण वर्गों को लगातार दुखी करती रहीं।

कई भारतीय चकित थे कि क्या जापानी मॉडल हमारे लिए संभव होगा। ऐसा लगता है कि जापानी बाजार की आधुनिक संस्थाओं को अपनाने तथा उससे पुराने और सामंती समाज को प्रतियोगी, क्रियान्वित तथा शिक्षा के आधार पर योग्यपूर्ण समाज में बदलने में कामयाब हो गए थे। उन्होंने अपने पारंपरिक पारिवारिक कर्तव्यों या अपनी पौराणिक नैतिक भावनाओं जैसे 'मुंह छिपाने' और 'सार्वजनिक लज्जा' को छोड़े बिना यह सब किया।

अब कोई भी अर्थर कोएस्टलर को नहीं पढ़ता। मगर 1940-50 में कोएस्टलर उस समय के बहुत बड़े विद्वान थे। उन्होंने भारत और जापान का दौरा किया और वहां 'लोटस एंड द रोबोट' नामक पुस्तक में पूर्व के आध्यात्मिक पुराणों को बेध दिया। भारत सरकार इतना झल्ला गई कि किताब पर प्रतिबंध लगा दिया। कोएस्टलर की किताब में काफी निरर्थक बातें लिखी हैं परंतु उसमें परिज्ञान के भी काफी महत्वपूर्ण तथ्य थे। इसमें उन्होंने भारत और जापान की तुलना की है जो एशिया के अन्य महान देशों में सबसे पारंपरिक और आधुनिक हैं। कोएस्टलर ने पाया कि भारत और जापान के समाज की बनावट एक समान थी जो उस परिवार के आधार पर बने थे, जिनके वंश विस्तृत तथा जाति-वर्गों में बंटे थे। इन दोनों समाजों में, बड़ों को अपने से छोटों से इज्जत मिलती थी, पुरुष महिलाओं पर हावी थे, बच्चे अपने शिक्षकों का सम्मान करते थे; अनुकूलता को व्यक्तित्व से ज्यादा महत्व दिया जाता था। दोनों ने ही तर्क शक्ति और परीक्षण से हटकर आध्यात्मिकता का मार्ग अपनाया।

कोएस्टलर ने कई महत्वपूर्ण भिन्नताएं भी निकालीं। जापान की जातीय व्यवस्था अव्यवस्थित थी, भारत की सुव्यवस्थित। आम जापानी नागरिक गोद लेने और शादी करने के बाद समुराई वर्ग में जा सकता था। रईस सेठ अधिकतर समुराई की पदवी को

अपने बेटों की शादी समुराई की बेटियों से कर खरीद लेते थे। जब सामंतवादी अर्थव्यवस्था औद्योगिक अर्थव्यवस्था में बदली तब नए व्यापारी और जायबस्तुज सामंत प्रदेश के गोद लिए हुए दामाद बन गए। भारत में खासतौर से गांवों में अंतरजातीय विवाह और यहां तक कि एक एक साथ अंतर्जातीय खान-पान के बारे में तो सोचना भी पाप था। यह इसलिए था क्योंकि जाति धर्म के द्वारा स्वीकृत की जाती थी और अब यह हरेक के धर्म का एक हिस्सा थी। जापान में जात-पांत सामाजिक पदानुक्रम का मामला था जिससे व्यावहारिक तौर पर निपटा जा सकता था। भारत में प्राधिकरण का आचार धर्म था। गुरु अपनी मौजूदगी में आध्यात्मिक दर्शन देते थे। गुरु ज्ञान बांटते थे, मगर यह सब दुनियावी प्रकृति थी।

भारतीय लोग समाज को चलाने में लापरवाही बरतते थे, मगर देवताओं को पूजने में वे कोई कमी नहीं करते थे। जापान में इसका उलटा था। जापान के नागरिक शिंटो समाधि पर भगवान को रिझाने के लिए बिना लय की ताली बजाते थे परंतु सामाजिक शिष्टाचार नियमित था, वह तोहफे के पार्सल को सजाने की पैंतीस विधियां जानता था और उसकी सबसे बड़ी त्रासदी यह थी वह समाज में अपनी पहचान ही खो बैठा। भारतीय धैर्य को लेकर परेशान रहते थे तो जापानी अपने रुतबे के बारे में चिंतित। भारतीय सोचते थे कि सेक्स सिर्फ प्रजनन के लिए है जबकि जापानियों को पता था कि सेक्स मनोरंजन के लिए भी है। भारतीय हस्तमैथुन करने पर अपने-आप को कसूरवार मानता था जबकि जापानी इसे सामयिक सुख मानता था लगभग सिगरेट पीने जैसा। भारतीय नारी लुभाने वाली थी जो आदमी की शक्ति को वश में कर लेती थी जबकि जापानी महिला विभिन्न प्रकार के सुख देती थी। भारतीय बच्चा प्यार-दुलार में ही डूबा रहता है और उसकी पढ़ाई

देर से शुरू होती जिससे वह असंयमी रहता था; जापानी बच्चे को बहुत छोटी उम्र से ही समाज के कड़े रीति-रिवाजों के अनुसार ही चलना पड़ता था।

कोएस्टलर की अंतर्दृष्टि में राष्ट्रीय प्रतिद्वंद्विता के लक्षण थे। जापान की धर्मनिरपेक्ष आत्मा स्पष्ट कर सकती है कि जैसे उनका तकनीकी के साथ प्रेमालाप। इसके बनिस्बत भारतीय इस बात में कम उत्साह दिखाते हैं कि विश्व कैसे काम कर रहा है। भारत की सामाजिक प्रणाली जापान के मुकाबले ज्यादा स्थिर थी और इसे यह साबित होता है कि वह दल के बेकार खिलाड़ी थे। जापान की अस्थिर जातीय व्यवस्था ने मेजी के दौरान व्यापारी वर्ग के उत्थान को आसान कर दिया और सामाजिक क्रांति को शुरू करने में भी मदद की। भारत इस सामाजिक क्रांति को अब भुगत रहा है जब आर्थिक सुधार हो चुके हैं और प्रजातंत्र को भुगतते पचास साल।

जापान अपनी आर्थिक परेशानियों के बाद भी एक महान देश है जो विश्व का भविष्य सुधारने के काबिल है। अभी भी, बहुत से वर्तमान विद्वान जो गांधी की आधुनिकता के प्रति संदेह के पक्षधर हैं, वे एक-एक करके जापान की सफलता का मूल्य आंकते हैं। वे इस बात से हैरान हैं कि क्या जापान तनख्वाह पाने वाला, जिसने लड़ाई के बाद से अपने रहन-रहन में नाटकीय ढंग से बढ़ोत्तरी का आनंद उठाया है, वह अपनी पारंपरिक शक्ति का साथ नहीं छोड़ रहा और क्या उसकी उन्नति उसकी सफलता की वजहों को मिटा रही है।

रॉबर्ट बेल्लाह, जो 1950 में हार्वर्ड में टालकाट पारसंस का छात्र था, ने जापान के लिए वह किया जो मैक्स वेबर ने पश्चिम के लिए किया। उसने आधुनिक जापान की सांस्कृतिक जड़ों तथा धर्म और बढ़ते हुए औद्योगिक समाज के बीच संबंध का परीक्षण किया। वेबर ने बताया कि औद्योगिक क्रांति सबसे पहले उत्तरी यूरोप और उत्तर

अमेरिका में आई क्योंकि वे प्रोटेस्टेंट थे और व्यक्तिवाद, तप तथा कठोर परिश्रम, खासतौर से व्यापारियों में, जैसे आचारों पर विश्वास रखते थे। दक्षिणी यूरोप तथा लैटिन अमेरिका के देशों में उनके बराबर वे नैतिक गुण नहीं थे क्योंकि वे कैथोलिक थे और इसलिए वे पिछड़े रहे। इसी तरह बेल्लाह ने परिकल्पना की कि जापान की सफलता की जड़ उसकी संस्कृति और धर्म में थी जिसने परिवार, कंपनी तथा देश के प्रति वफादारी संचालित की। कुछ ऐसी घटनाओं ने बेल्लाह के कथन को साबित कर दिया, जैसे 1960-90 के दौरान जापान ने आर्थिक महाशक्ति बन, चमत्कारिक सफलता हासिल की।

तीस साल बाद अस्सी के दशक के बीच में बेल्लाह अपनी पुस्तक के नए संस्करण को लाए। आलोचना करने के बजाए बेल्लाह ने नए परिचय में पूछा कि क्या जापान को अपनी सफलता के लिए बहुत ज्यादा कीमत नहीं चुकानी पड़ी। स्पष्ट रूप से उसने पाया कि जापान विश्व में सबसे ज्यादा कारगर शासित समाज है। जापानी अधिकारी काम के प्रति समर्पित तथा काबिल थे- कहीं नहीं तो औद्योगिक एवं व्यापार मंत्रालय में, जो भारत की भारतीय जनता पार्टी की नीतियों का प्रिय था, जिसने जापानी व्यापारियों को बदलते अंतरराष्ट्रीय बाजार में उतारने के लिए सफलतापूर्वक उदार और सूचना में मदद की। मगर जापान उस ढंग से आधुनिक नहीं बना जैसे समाजशास्त्रियों ने सोचा था। इसने व्यापक नीतिशास्त्र, जो प्रत्येक व्यक्ति की प्रतिष्ठा की इज्जत करता है, को विकसित नहीं किया। जापानी अभी भी गुटों में बंटे हुए थे जो उनकी वफादारी चाहते थे और बाहरवालों के प्रति कोई सहानुभूति नहीं रखते थे। न ही जापानी महिलाओं ने समानता के अधिकार के क्षेत्र में ही ज्यादा उन्नति की।

बेल्लाह यह विश्वास करता था कि तीव्र उन्नति ने जापान की पारंपरिक जिंदगी को धमका रखा था; चाहे कितना ही छोटा हो, जो मौसम और प्रकृति का अहसास कराता

था। मगर अब जापानी अपार्टमेंट्स में रहते हैं; और उनकी बैठक में टेलीविजन राज करता है। बच्चे अलग अपने कमरे में रहते हैं जहां वे दिन-रात पढ़ते हैं। पिता एक अजबनी की तरह जो घर और काम के बीच में लंबा सफर तय करता है। पैतृक गांव और मंदिर से संबंध टूट गए और इसी प्रकार ऐक्य में भी जो जापानी धर्म का केंद्रीय सिद्धांत है। हालांकि और देशों के मुकाबले जापान में जिंदगी सुहावनी है परंतु वहां का प्राकृतिक भूदृश्य खत्म होता जा रहा है। बेल्लाह ने कबूल किया कि उसकी किताब की सबसे बड़ी कमी आधुनिक सिद्धांत ही है। वह यह नहीं देख पाया कि जरूरी नहीं है कि पूंजी जोड़ने से अच्छी जिंदगी बीतेगी बल्कि दूसरी ओर स्थिर समाज की अवस्थाओं को भी नष्ट कर सकती है। पारसंस ने यह मान लिया था कि वैयक्तिकता अनिवार्य रूप से आधुनिकता से जुड़ी है। जापानियों के इस अनुभव ने इस जोड़ को स्वयं प्रमाणित कर कम कर दिया।

'आधुनिकता का विकृत विज्ञान' पर बोलने वाले भारत में बहुत हैं, आशीष नंदी और कई अकादमियों से लेकर भारतीय जनता पार्टी के दुर्भाग्य की घोषणा करने वाले तक। वे हमें आधुनिकता की बुराइयां याद दिलाते हुए कभी नहीं थकते। शैक्षणिक मौसम मेरे स्नातक काल के दिनों से पहले ही बदल गया था और हमारी आधुनिक परियोजना इसकी सबसे बड़ी शिकार हुई। यह पश्चिमी और पूर्वी शिक्षा के कारण भारी दबाव में है। 1950-60 में सब इस बात पर राजी थे कि तीसरी दुनिया को उन्नति करनी होगी और अपने समाजों को पारंपरिक से आधुनिक बनाना होगा। आज हमें कम संदेह है, क्योंकि किसी को भी नहीं पता कि आधुनिकता क्या है। लेकिन बीसवीं शताब्दी के ऐतिहासिक अनुभव ने इस पर और भी बेतुके सवाल खड़े कर दिए हैं। सोवियत यूनियन और फासिस्ट जर्मनी ने बिना लोकतंत्र के औद्योगीकरण किया। सुदूर पूर्व बिना व्यक्तिवाद के उद्योग उन्नत

हुए। भारत में नौकरशाही विकास के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा बन गई। आधुनिकता के साथ धर्म को अपनी जगह से हटाना था मगर बीसवीं शताब्दी में अमेरिका ने धर्म का बहुत बड़ा पुनरुत्थान देखा (यूरोप ने भी ऐसा ही पुनरुत्थान उन्नीसवीं शताब्दी में देखा था।)

ऑक्सफोर्ड के इतिहासकार डेविड बाशब्रूक ने हाल ही में और परेशानियां खड़ी कर दीं। आधुनिकता का उत्थान सबसे पहले पश्चिम में हुआ और फिर पूरे विश्व में फैला। यह एक व्यापक अवधारणा बन गई। हालांकि बाशब्रूक ने पश्चिम में ऐतिहासिक जड़ों, जो आधुनिकता की ओर जाती हैं, के एशिया के चीन, भारत और इस्लाम में होने का संकेत दिया है। औपचारिक तर्कशक्ति, जिसने आधुनिक विज्ञान को जन्म दिया, एंग्लो-सेक्सोन में आने से बहुत पहले ही संस्कृत और अरबी सांस्कृतिक दुनिया का हिस्सा थी। वाणिज्य और मुद्रा अर्थव्यवस्था जिसने आधुनिक पूंजीवाद को जन्म दिया, मध्य यूरोप से पहले एशियाई समाजों में विद्यमान थी। इसी प्रकार संपत्ति और वर्ग संबंध भी उनमें प्रचलित थे। बाशब्रूक ने दर्शाया कि उपनिवेशवाद से पूर्व भारतीय समाज ने ब्राह्मणिक शास्त्र और भक्ति आंदोलनों में काफी हद तक व्यक्तिवाद प्रदर्शित किया। इस बात का भी प्रमाण है कि नातेदारियों और मंदिर में धार्मिक संप्रदायों में समानता थी। निष्कर्ष निकालते हुए वह कहते हैं, जैसा एडवर्ड ने भी कहा है, कि आधुनिकता मूलतः पश्चिमी प्रभाव का आदर्श है न कि कोई वैज्ञानिक घटना।

अब काफी सालों बाद उत्तर कनफ्यूशियन की परिकल्पना ने आधुनिकता के मानक आदर्शों को ललकारा और यह किसी हद तक प्रचलित भी हुआ। सुदूर पूर्व में हाल ही में आई परेशानियों के बावजूद इस परिकल्पना को मानने वाले अनेक हैं। यह सिद्ध करता है

कि जापान और पूर्व तथा पूर्वी दक्षिण एशिया ने आर्थिक चमत्कारों को कनफ्यूशियन विस्तारपूर्वक मूल्यांकित करता है।

विश्व तथा उसके मामलों के प्रति सकारात्मक रुख, एक जीवित अनुशासनपूर्ण तथा स्वयं सुसंस्कृत रहने का ढंग, अधिकार और कानून, मितव्ययिता के प्रति सम्मान और एक सुगठित पारिवारिक जिंदगी के लिए परस्पर चिंताएं कनफ्यूशियन के कुछ बड़े सिद्धांत हैं जो शिक्षा के जरिये सुदूर पूर्व में फैले और जिन्होंने आर्थिक सफलता भी हासिल की।

इस परिकल्पना के पीछे एक गुप्त अनुमान भी है। इसके अनुसार, जैसे ही बौद्धवाद ने तिब्बती पठार और हिमालय की पहाड़ियां पार कीं, वैसे ही उसमें एक गंभीर रूपांतरण हुआ। वह धर्म जो आज तक के इतिहास में विश्व का सबसे ज्यादा नकारा गया धर्म था, वह अब विश्व का महत्वपूर्ण तथा दृढ़ धर्म बन गया था। हालांकि भारत में महायान बौद्धवाद को कुछ हद तक स्वीकृति मिल गई थी मगर सिर्फ चीन और पूर्व एशियाई महायान बौद्धत्व देशों में ही लगता है कि निर्वाण इसी दुनिया में है। इसलिए हम अधिकतर अनुमानित तौर पर सुनते हैं कि सुदूर पूर्व में निर्वाण और समसार एक ही हैं और धर्मकाया जो कि 'बुद्ध का असली शरीर है' इस दुनिया में है। अगर कनफ्यूशियन की परिकल्पना और भारत के आधुनिकीकरण के लिए बुरी खबर है। इसका मतलब है कि हम आसानी से उनके पाठ भारत में स्थानांतरित नहीं कर सकते और विशाल हिमालय की पहाड़ियां सदा ही दुर्गम आड़ बनी रहेंगी।

विडंबना यह रही कि शताब्दी की शुरुआत में कनफ्यूशियनवाद अच्छा नहीं रहा। चीन के विद्वान सोचते थे कि चीन के पिछड़े होने का कारण उसकी सांस्कृतिक परंपरा में है, खासतौर से कनफ्यूशियन सिद्धांतों में आश्चर्य की कोई बात नहीं। उन्होंने उत्कट परिश्रम से कनफ्यूशियन के तथ्यों पर प्रहार किया। मैक्स वेबर ने 'दी रिलिजन ऑफ चाइना' में

लिखा है कि चीन की संस्कृति और धार्मिक परंपरा आधुनिकता के अनुकूल नहीं थी। उसने बताया कि इसकी नीति ने आर्थिक विकास को बाधित कर दिया क्योंकि कनफ्यूशियनवाद ने विद्वानों को सामाजिक वर्ग में ऊंचे स्थान पर रखा और उसके साथ सरकारी अधिकारी को भी। इसने वफादारी की श्रृंखला को महत्व दिया जो संतान परायणता से शुरू होती है और आगे सरकार की उपयोगिता तक बढ़ती है। वेबर ने यह नहीं सोचा था कि इतना कठोर सामंत समाज पूंजीवाद को बढ़ावा देगा जो परिवर्तनशील, व्यक्तिवादी तथा पुरानी परंपराओं का विनाशक था। मैं सोचता कि हाल ही में अनुभव से आज हम कह सकते हैं कि वेबर बिल्कुल गलत था। इसी तरह, उत्तर कनफ्यूशियन ने अपने वक्तव्य का कुछ ज्यादा वर्णन कर दिया और उन्होंने हाल में हुई आर्थिक समस्या पर मिट्टी डाल दी।

नीतिशास्त्र को हम चाहे जो नाम दें- प्रोटेस्टेंट, कनफ्यूशियन, मारवाड़ी- सचाई यह है कि कुछ गुण आर्थिक विकास को उत्साहित कर रहे हैं। हम कभी उन्हें 'मध्यवर्ग के सिद्धांत' समझते थे। ये हैं कड़ी मेहनत, शिक्षा, बचत और भविष्य के लिए पूंजी निवेश तथा एक सामान्य उद्देश्य के प्रति सहयोग देने की काबिलियत। हार्वर्ड के प्रोफेसर मैकफर्कुहर ने हाल ही में कनफ्यूशियनवाद के समर्थकों की (खासतौर से सिंगापुर के) एक विशिष्ट क्लब बनाने की कोशिश के लिए निंदा की। भारत के कुछ व्यापारिक उद्यमियों तथा दक्षिण पूर्वी एशिया के चीनी व्यापारियों के बीच कोई भिन्नता नहीं है, उन्होंने कहा कि मुझे विश्वास नहीं है कि जो धर्म विश्व का त्याग करने की शिक्षा देता हो, वह किसी को व्यापारिक आत्मा होने से मना करेगा। यह तो व्यक्ति को निर्णय लेना है कि वह इस ज़िंदगी में ऐसा काम करना चाहता है या नहीं जो उसको अगले जन्म में बदतर ज़िंदगी जीने के लिए मजबूर कर दे।

मैं प्रोफेसर मैकफर्कुहर से सहमत हूं। मैं यह भी मानता हूं कि आर्थिक कार्यों के प्रदर्शन के लिए सांस्कृतिक गुण सीमित प्रयोग के लिए होते हैं। सुदूर पूर्व में आधुनिक पूंजीवाद की सफलता अच्छी आर्थिक नीतियों तथा अभ्यासों की वजह से है और यह स्थानांतरित भी की जा सकती है। सुदूर पूर्व देशों ने उच्च दर्जे का विकास हासिल किया तथा कायम रखा क्योंकि उन्होंने बहुत समझदारी से अपने संसाधनों का प्रयोग किया। उन्होंने निर्यात के लिए मजदूरी द्वारा उत्पादन को महत्व दिया। उन्होंने अपने लोगों को शिक्षित किया, उनकी सरकारें प्रतिद्वन्द्विता बनाने तथा कमियों को सुधारने के लिए बीच में आईं। भारत में इसके विपरीत सरकारी नीतियों ने कमियों को पैदा किया। इसने दुर्लभ पूंजी को सस्ता, श्रमिक दल को महंगा, विनिमय मूल्यों की हद से ज्यादा बढ़ा दिया और प्रतियोगी दबावों को कम कर दिया। इनमें से कुछ कमियों को सुधारने के लिए हमारे आर्थिक सुधार शुरू हो गए और हमने तभी से सुदूर पूर्व की सफलता के कुछ नियमों को अपनाना शुरू कर दिया। हालांकि, हमने अभी अपने शैक्षणिक संस्थान को गंभीरता से सुधारना नहीं शुरू किया, जो सबसे पहले विकास के साथ न्याय प्रदान करने योग्य हैं। बस, हमें अब आर्थिक तथा शैक्षणिक सुधारों पर ज्यादा ध्यान देना चाहिए और सांस्कृति पर कम।

'आधुनिकता का विकृत विज्ञान' के अनुसार मैं यह मानता हूं कि भाजपा और आधुनिकता के शैक्षणिक आलोचक यह जानने में सक्षम नहीं हुए कि आधुनिकता ही ज्यादा-से-ज्यादा लोगों के एक अच्छी जिंदगी जीने के लिए काबिल बनाने का मौका देती है। आधुनिकता से बचने का मतलब है कि लोगों को जबरदस्ती गरीब तथा पारंपरिक समाज में जाति के नाम पर हो रहे अन्यायों के निकट लाना। समाज के बीस प्रतिशत उच्च वर्ग के लोगों के लिए अपने उच्च तथा मध्यवर्ग की आरामदायक जिंदगी में रहकर आधुनिकता की निंदा

करना आसान है। मगर उन लोगों से पूछो कि वे किसी भी दिन कोकाकोला या केएफसी। के साथ जाना पसंद करेंगे, अगर इसका मतलब दो वक्त की रोटी, एक अच्छा घर तथा एक नौकरी है तो। अगर जापान के रहन-सहन से उनके अपने रहन-सहन को बदलने का मौका दिया जाए तो वे हमेशा गांव की पारंपरिक जिंदगी छोड़ एक अच्छी जिंदगी व्यतीत करना मंजूर करेंगे। शहरों की ओर प्रवास इस बात का गवाह है। इसलिए बेल्लाह की चिंता या आशीष नंदी की आलोचना में शामिल लोगों की प्रतिध्वनि नहीं सुन पाएगी।

यह भारत जैसे गरीब देश के लिए आधुनिकता की दुविधा है। भाजपा की पारंपरिक संस्कृति की अच्छी चीजें अपनाने की इच्छा से असहमत होना मुश्किल है। यह विदेशीयता के डर या अत्यधिक कर सुरक्षा से हासिल नहीं होगा। यह शक्तिशाली प्रतियोगी अर्थव्यवस्था और शिक्षा के गुण तथा मात्रा को सुधारने से आएगा जो भारतीयों को आखिरकार उनकी जिंदगी तथा उनकी संस्कृति में विश्वास पैदा करेगा। यह कोई सवाल नहीं है कि आधुनिक जिंदगी पारंपरिक समाज के कई लक्षणों को मिटा देगी, मगर शिक्षा के जरिये बीते दिनों को समझने से परंपरा में मनुष्य को यथार्थ मिलेगा। और जो अच्छा है उसे अपनाने और जो बुरा है उसे नकारने की शक्ति देगा।

पिछले दशक में भाजपा के उत्थान ने हमें दुबारा सोचने पर मजबूर कर दिया कि हमारी जिंदगी में राष्ट्रवाद की जगह कहां है। राष्ट्रवाद के दो घातक आकर्षण हैं; यह पहले से ही स्वयं व्याप्ति को स्वीकार कर लेता है, जो एक बहुत अच्छा दृष्टिकोण है और यह बहुत होशियारी से बताता है कि हम इसलिए उत्कृष्ट हैं क्योंकि हम किसी एक समय और जगह से संबंध रखते हैं। बदकिस्मती से ये दोनों धारणाएं गलत और यहां तक कि घातक हैं। खासतौर से अब जब हम ग्लोबल विश्व में एक-दूसरे पर निर्भर हो के रहते हैं।

आत्मनिर्भर होने पर गर्व करने में कोई बुराई नहीं है, मगर सुरक्षा इसके विपरीत परिणाम लाएगी। भारत में एक बहुत शक्तिशाली भावना है। इसकी राष्ट्रीय सफलता के लिए स्वयं में विश्वास होना बहुत जरूरी है। विदेशी कंपनियों को बाहर रखकर जितना हो सके, ज्यादा से ज्यादा चीजें भारत में बनाने की कोशिश करनी चाहिए (वह भी जब इसका कोई आर्थिक मतलब न हो)। यह धारणा स्वदेशी के नाम से जानी जाती है और पिछले कुछ सालों से इसका पुनः प्रचलन हुआ है, खासतौर से भाजपा के समर्थकों में। मैं इसके दस कारण सोच सकता हूँ कि स्वदेशी रूपी सुरक्षा एक बेकार नीति है।

पहला, हीनता की भावना को प्रदर्शित करना। जो सुरक्षा चाहते हैं, वे यह सोचते हैं कि भारत के लोग हीन हैं और बराबरी नहीं कर सकते। वे यह भूल जाते हैं कि पालनपुरी जैनियों ने बिना कहे हीरों के विश्व-बाजार के आधे हिस्से पर कब्जा किया हुआ है, मुख्य रूप से यहूदियों के मुकाबले। आदित्य बिड़ला ग्रुप विश्व का सबसे बड़ा रेयान उत्पादक है, लक्ष्मी मित्तल के विश्व स्टील साम्राज्य ने उसे इंग्लैंड की महारानी से ज्यादा रईस बना दिया है; रिलायंस एशिया की पहली दस सराही गई कंपनियों में से एक है; ताज और ओबेरॉय ने विश्व-भर में होटलों की श्रृंखला बना ली है। भारत की सॉफ्टवेयर कंपनियों में विश्व के सर्वश्रेष्ठ कंप्यूटर इंजीनियर हैं और सिलिकॉन वैली के भारतीय व्यापारी इंटरनेट क्रांति के क्षितिज बन गए हैं। स्वदेशी के समर्थकों को भारत की काबिलियत पर ज्यादा विश्वास होना चाहिए।

दूसरा, यह कई लाख भारतीयों की कीमत पर कुछ हजार उद्योगपतियों के हितों की सुरक्षा के बारे में सोचती है। स्वदेशी नीति विदेशी कंपनियों, विदेशी उत्पादनों के प्रवेश पर पाबंदी तथा आयात कर बढ़ा देगी। यह हमारे नागरिकों को विश्व के सस्ते तथा बढ़िया उत्पादनों से वंचित कर देगी। अच्छी सरकारें पहले अपने उपभोक्ताओं के हितों की

सुरक्षा करती हैं और फिर बाद में उत्पादकों की। तीसरा, स्वदेशी हमारी कंपनियों के हितों के बारे में भी नहीं सोचती। पुष्ट प्रतियोगिता सर्वोच्च विद्यालय है जहां उद्योग सफलता हासिल करना सीखते हैं। प्रतिद्वंद्विता कंपनियों को दाम गिराने तथा गुण सुधारने पर मजबूर कर देती है जिससे उपभोक्ताओं की अपेक्षाएं और बढ़ जाती हैं। प्रतिद्वंद्विता कम करने पर स्वदेशी हमारी कंपनियों को कमजोर बना देगी। इसलिए स्वदेशी की अवधारणा न केवल हमारे उपभोक्ताओं बल्कि उत्पादकों के लिए भी सही नहीं है।

चौथा, अपने सुगठित औद्योगिक ढांचे को बनाने के लिए हमें बीस हजार करोड़ डॉलर की जरूरत है, भारत में इतना पैसा किसी के पास नहीं है। हमें विश्व पूंजी पर निर्भर रहना पड़ता है। वह ब्रिटिश पूंजी थी जिसने अमेरिका को एक सुगठित औद्योगिक ढांचा बनाने के लिए उन्नीसवीं शताब्दी में मदद दी और उसकी औद्योगिक क्रांति शुरू की। भाजपा भी यह मानती है कि उस ढांचे को बनाने के लिए विदेशी पूंजी की जरूरत है। अगर वह भारी संपत्ति जैसे पावर प्लांट, सड़कें, बंदरगाह और पुल विदेशियों की ओर उलटने के लिए राजी है तो उसे आलू के चिप्स और गैस भरा हुआ बोतलबंद पानी के बारे में चिंता करने की जरूरत नहीं है।

पांचवां, संरक्षणकारियों की यह सोच गलत है कि हम विदेशियों के लिए अपने संगठित ढांचे के दरवाजे खोल दें और उपभोक्ताओं के उत्पादनों के लिए बंद कर दें। विदेशी पूंजी अब एकबद्ध है और सामूहिक विचारों के साथ कल्पनाओं और 'बाजार की धड़कन' के आधार पर कार्य कर रही है। हम चयनशील या अर्ध फलप्रद नहीं हो सकते। छठा, स्वदेशी के बारे में कुछ नया नहीं है। हम आजादी से इसके साथ कार्य करते आए हैं। इसने हमें सिर्फ रद्दी, महंगे सामान और कमजोर भाजपा अप्रतियोगी कंपनियां दी हैं। भाजपा के समर्थक स्वदेशी केवल दस सालों तक चाहते हैं जिससे खेलने की एक समतल

जगह बन जाए। सातवां, हर देश में अपनी स्वदेशी सक्रियता होती है मगर समझदार सरकारें स्वदेशी गुटों को अनदेखा कर देती हैं। बीस सालों से अमेरिका के राष्ट्रपतियों ने ऑटो बनाने वालों की दरखास्त को खारिज कर दिया जो जापानी कारों के आयात को सीमित करना चाहते हैं। जब जापानियों ने अमेरिका के एक तिहाई बाजार को काबू किया, उनके स्वदेशी गुट ने अमेरिकी ऑटोमोबाइल के खत्म होने की घोषणा कर दी, मगर क्या हुआ? जापानी प्रतियोगिता ने डेट्रॉयट को अपनी कारें सुधारने और बाजार पर दुबारा कब्जा करने के लिए मजबूर कर दिया। अमेरिकी लोग बहुत अच्छी कार चलाते हैं और अगर राष्ट्रपति ने सुरक्षा का चुनाव किया होता तो वह आज भी पिंटो चला रहे होते।

आठवां, स्वदेशी लाइसेंस राज को वापस ले आएगा। भाजपा उच्च तकनीक के उत्पादन चाहती है, न कि उपभोक्ताओं के उत्पादन। हालांकि पर्सनल कंप्यूटर भी उपभोक्ता उत्पादन है। अनिवार्य रूप से, राजनीतिक या आधिकारिक विचारशीलता ही यह तय करेगी कि कौन आता है। यह भ्रष्टाचार का दूसरा नाम है। स्वदेशी दिमाग में एक 'सामान्य धारणा' घूम रही है जो एक निरंकुश समाज बनाना चाहती है। नौवां, स्वदेशी कहता है कि कोई हमें यह बताता है कि हमारे लिए क्या अच्छा है। स्वदेशी की गहराई में निरंकुश शासन की भावना निहित है। दसवां, स्वदेशी किसी काम का नहीं है। उस देश में जिसमें एक तिहाई लोग गरीब की जिंदगी जीते हैं और आधे अनपढ़ हैं, क्या यह मायने रखता है कि कुछ लोग कैलोगस कॉर्नफ्लैक्स खाते हैं। अगर विदेशी पूंजी निवेश कुल निवेश से दो प्रतिशत कम है, तो हमें बेकार की बहस में वक्त नहीं गंवाना चाहिए। इसकी अपेक्षा हमें अपने कार्यक्रमों को सुधारने की दिशा में कदम उठाने चाहिए।

हालांकि मैंने उनकी किताबें पढ़ी हैं, मैं 1992 तक अमर्त्य सेन से नहीं मिला था, जब मैंने पी.एंड.जी. से छुट्टियां ली हुई थीं तो मैं हार्वर्ड में 'समता और असमानता' पर हुए उनके सेमिनार में शामिल हुआ। उन्होंने अभी तक नोबेल पुरस्कार नहीं जीता था परंतु वह कैम्पस में मौजूद कई महान विद्वानों में से एक थे। फिर भी उन्होंने सबके साथ बहुत अच्छी तरह समय गुजारा। एक दिन मैंने उन्हें वॉल स्ट्रीट जर्नल के लिए मेरे द्वारा लिखा हुआ कॉलम दिखाया जिसमें मैंने भाजपा को पक्की रूढ़िवादी पार्टी बताया। यह भाजपा की सोच के हिसाब से सही बैठता है। मैंने सोचा क्योंकि वह परंपरा का संरक्षण करना चाहती थी और जहां तक देश में दो राजनीतिक दल राज करने लगें। सेन ने सोचा कि मैं भाजपा के बारे में सोचने के लिए निराशापूर्वक, आदर्शवादी था कि भाजपा यह व्यक्तित्व और कार्यसूची अपना लेगी। उनके लिए वह एक फासिस्ट दल था। जिसने हमें परंपरा और आधुनिकता के बारे में बहस में डाल दिया। उन्होंने सोचा कि भाजपा का विदेशी उत्पादनों के प्रति राष्ट्रीय भय दिमागी उलझनों की वजह से उत्पन्न हुआ। उन्होंने पूछा कि अगर पेंसिलीन के उपयोग से पाश्चात्यवाद आ सकता हो। शेक्सपीयर के मनोरंजन के बारे में क्या ख्याल है। गोथे क्या किसी तरह यूरोपियन गुट को धोखा दे रहा था क्योंकि वह कालिदास से प्रभावित हो गया था। भारतीय खाने भी भारतीय नहीं थे क्योंकि उनमें मिर्च डाली गई थी जो भारत में पुर्तगाली लाए थे।

सेन ने यह विचार एक वार्ता में व्यक्त किए जो उन्होंने कुछ साल बाद इंडिया इंटरनेशनल सेंटर दिल्ली में दिए थे। उन्होंने कहा कि वैज्ञानिक विचारों के उत्थान को किसी बिंदु के द्वारा व्यक्त करना मुश्किल है। ट्रिग्नोमैटरी के कुछ प्रमुख विचार भारत में उत्पन्न हुए जबकि वह भारत में पश्चिमी किताबों के द्वारा वापस आए। उन्होंने 'साइन्स' का उदाहरण दिया जो भारतीय गणितज्ञ आर्यभट्ट द्वारा छठी शताब्दी ईसा पूर्व की

शुरुआत में इस्तेमाल किया गया। उन्होंने दशमलव मूल का वर्णन किया जो कि भारत में छठी शताब्दी तक विकसित हुआ और फिर यहां से अरबी गणितज्ञों द्वारा लेने के बाद दसवीं शताब्दी की आखिरी इकाई में यूरोप पहुंचा। इसी तरह 'शून्य' भी इसी समय भारत से यूरोप गया तथा अरब गणितज्ञों तक स्थानांतरित हुआ। भारतीय सभ्यता इतनी विस्तृत और बहुसंख्यक है तथा बहुत से प्रभावों से बनी है- द्रविड़, आर्य, हिंदू, ग्रीक, बौद्ध सिथियन, इस्लाम, यूरोपियन- कि अब यह वैश्विक संस्कृति के प्रभावों के साथ खड़ी हो सकती है। खतरों को बढ़ा-चढ़ाकर बोलने वालों के विपरीत, मैं यह महसूस करता हूं कि भारतीय संस्कृति पुष्ट है और इसे अपनी प्रतिष्ठा और पहचान को बनाए रखना चाहिए। जिन्हें भारतीय संस्कृति के खो जाने का डर महसूस होता है, वे रवींद्रनाथ ठाकुर को पढ़ें। हमेशा की तरह वह सही थे, जब उन्होंने लिखा, "हम मानवीय उत्पादकों को जो भी समझते और मनोरंजन लेते हैं, वह तुरंत ही हमारा बन जाता है चाहे उसका मूल जहां भी हो। मैं मानवीयता पर गर्व करता हूं जब मैं दूसरे देशों के कवि और कलाकारों को अपना समझ उनकी सराहना करता हूं। मुझे बेतहाशा खुशियों के साथ यह महसूस करने दो कि मनुष्य के सारे महान वैभव मेरे हैं।"